सयानी बुआ

मन्नू भंडारी

सयानी बुआ

सब पर मानो बुआजी का व्यक्तित्व हावी है। सारा काम वहाँ इतनी व्यवस्था से होता जैसे सब मशीनें हों, जो कायदे में बँधीं, बिना रुकावट अपना काम किए चली जा रही हैं। ठीक पाँच बजे सब लोग उठ जाते, फिर एक घंटा बाहर मैदान में टहलना होता, उसके बाद चाय-दूध होता।उसके बाद अन्नू को पढने के लिए बैठना होता। भाई साहब

भी तब अखबार और ऑफिस की फाइलें आदि देखा करते। नौ बजते ही नहाना शुरू होता। जो कपडे बुआजी निकाल दें, वही पहनने होते। फिर कायदे से आकर मेज पर बैठ जाओ और खाकर काम पर जाओ।

सयानी बुआ का नाम वास्तव में ही सयानी था या उनके सयानेपन को देखकर लोग उन्हें सयानी कहने लगे थे, सो तो मैं आज भी नहीं जानती, पर इतना अवश्य कँगी कि जिसने भी उनका यह नाम रखा, वह नामकरण विद्या का अवश्य पारखी रहा होगा।

बचपन में ही वे समय की जितनी पाबंद थीं, अपना सामान संभालकर रखने में जितनी पटु थीं, और व्यवस्था की जितना कायल थीं, उसे देखकर चकित हो जाना पडता था। कहते हैं, जो पेंसिल वे एक बार खरीदती थीं, वह जब तक इतनी छोटी न हो जाती कि उनकी पकड में भी न आए तब तक उससे काम लेती थीं। क्या मजाल कि वह कभी खो जाए या बार-बार नोंक टूटकर समय से पहले ही समाप्त हो जाए। जो रबर उन्होंने चौथी कक्षा में खरीदी थी, उसे नौवीं कक्षा में आकर समाप्त किया।

उम्र के साथ-साथ उनकी आवश्यकता से अधिक चतुराई भी प्रौढता धारण करती गई और फिर बुआजी के जीवन में इतनी अधिक घुल-मिल गई कि उसे अलग करके बुआजी की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। उनकी एक-एक बात पिताजी हम लोगों के सामने उदाहरण के रूप में रखते थे जिसे सुनकर हम सभी खैर मनाया करते थे कि भगवान करे, वे ससुराल में ही रहा करें, वर्ना हम जैसे अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित-जनों का तो जीना ही हराम हो जाएगा।

ऐसी ही सयानी बुआ के पास जाकर पढने का प्रस्ताव जब मेरे सामने रखा गया तो कल्पना कीजिए, मुझ पर क्या बीती होगी? मैंने साफ इंकार कर दिया कि मुझे आगे पढना ही नहीं। पर पिताजी मेरी पढाई के विषय में इतने सतर्क थे कि उन्होंने समझाकर, डाँटकर और प्यार-दुलार से मुझे राजी कर लिया। सच में, राजी तो क्या कर लिया, समझिए अपनी इच्छा पूरी करने के लिए बाध्य कर दिया। और भगवान का नाम गुहारते-गुहारते मैंने घर से विदा ली और उनके यहाँ पहुँची।

इसमें संदेह नहीं कि बुआजी ने बडा स्वागत किया। पर बचपन से उनकी ख्याति सुनते-सुनते उनका जो रौद्र रूप मन पर छाया हुआ था, उसमें उनका वह प्यार कहाँ तिरोहित हो गया, मैं जान ही न पाई। हाँ, बुआजी के पति, जिन्हें हम भाई साहब कहते थे, बहुत ही अच्छे स्वभाव के व्यक्ति थे। और सबसे अच्छा कोई घर में लगा तो उनकी पाँच वर्ष की पुत्री अन्नू।

घर के इस नीरस और यंत्रचालित कार्यक्रम में अपने को फिट करने में मुझे कितना कष्ट उठाना पडा और कितना अपने को काटना-छाँटना पडा, यह मेरा अंतर्यामी ही जानता है। सबसे अधिक तरस आता था अन्नू पर। वह इस नन्ही-सी उमर में ही प्रौढ हो गई थी। न बच्चों का-सा उल्लास, न कोई चहचहाहट। एक अज्ञात भय से वह घिरी रहती थी। घर के उस वातावरण में कुछ ही दिनों में मेरी भी सारी हँसी-खुशी मारी गई।

यों बुआजी की गृहस्थी जमे पंद्रह वर्ष बीच चुके थे, पर उनके घर का सारा सामान देखकर लगता था, मानों सब कुछ अभी कल ही खरीदा हो। गृहस्थी जमाते समय जो काँच और चीनी के बर्तन उन्होंने खरीदे थे, आज भी ज्यों-के-त्यों थे, जबकि रोज उनका उपयोग होता था। वेसारे बर्तन स्वयं खडी होकर साफ करवाती थीं। क्या मजाल, कोई एक चीज भी तोड दे। एक बार नौकर ने सुराही तोड दी थी। उस छोटे-से छोकरे को उन्होंने इस कसूर पर बहुत पीटा था। तोड-फोड से तो उन्हें सख्त नफरत थी, यह बात उनकी बर्दाश्त के बाहर थी। उन्हेंबडा गर्व था अपनी इस सुव्यवस्था का। वे अक्सर भाई साहब से कहा करती थीं कि यदि वे इस घर में न आतीं तो न जाने बेचारे भाई साहब का क्या हाल होता। मैं मन-ही-मन कहा करती थी कि और चाहे जो भी हाल होता, हम सब मिट्टी के पुतले न होकर कम-से-कम इंसान तो अवश्य हुए होते।

बुआजी की अत्यधिक सतर्कता और खाने-पीने के इतने कंट्रोल के बावजूद अन्नू को बुखार आने लगा, सब प्रकार के उपचार करने-कराने में पूरा महीना बीत गया, पर उसका बुखार न उतरा। बुआजी की परेशानी का पार नहीं, अन्नू एकदम पीली पड गई। उसे देखकर मुझे लगता मानो उसके शरीर में ज्वर के कीटाणु नहीं, बुआजी के भय के कीटाणु दौड रहे हैं, जो उसे ग्रसते जा रहे हैं। वह उनसे पीडित होकर भी भय के मारे कुछ कह तो सकती नहीं थी, बस सूखती जा रही है।

आखिर डॉक्टरों ने कई प्रकार की परीक्षाओं के बाद राय दी कि बच्ची को पहाड पर ले जाया जाए, और जितना अधिक उसे प्रसन्न रखा जा सके, रखा जाए। सब कुछ उसके मन के अनुसार हो, यही उसका सही इलाज है। पर सच पूछो तो बेचारी का मन बचा ही कहाँ था? भाई साहब के सामने एक विकट समस्या थी। बुआजी के रहते यह संभव नहीं था, क्योंकि अनजाने ही उनकी इच्छा के सामने किसी और की इच्छा चल ही नहीं सकती थी। भाई साहब ने शायद सारी बात डॉक्टर के सामने रख दी, तभी डॉक्टर ने कहा कि माँ का साथ रहना ठीक नहीं होगा। बुआजी ने सुना तो बहुत आनाकानी की, पर डॉक्टर की राय के विरुध्द जाने का साहस वे कर नहीं सकीं सो मन मारकर वहीं रहीं।

जोर-शोर से अन्नू के पहाड जाने की तैयारी शुरू हुई। पहले दोनों के कपडों की लिस्ट बनी, फिर जूतों की, मोजों की, गरम कपडों की, ओढने-बिछाने के सामान की, बर्तनों की। हर चीज रखते समय वे भाई साहब को सख्त हिदायत कर देती थीं कि एक भी चीज खोनी नहीं चाहिए- 'देखो, यह फ्रॉक मत खो देना, सात रुपए मैंने इसकी सिलाई दी है। यह प्याले मत तोड देना, वरना पचास रुपए का सेट बिगड जाएगा। और हाँ, गिलास को तुम तुच्छ समझते हो, उसकी परवाह ही नहीं करोगे, पर देखो, यह पंद्रह बरस से मेरे पास है और कहीं खरोंच तक नहीं है, तोड दिया तो ठीक न होगा।

प्रत्येक वस्तु की हिदायत के बाद वे अन्नू पर आईं। वह किस दिन, किस समय क्या खाएगी, उसका मीनू बना दिया। कब कितना घूमेगी, क्या पहनेगी, सब कुछ निश्चित कर दिया। मैं सोच रही थी कि यहाँ बैठे-बैठे ही बुआजी ने इन्हें ऐसा बाँध दिया कि बेचारे अपनी इच्छा के अनुसार क्या खाक करेंगे! सब कह चुकीं तो जरा आर्द्र स्वर में बोलीं, 'कुछ अपना भी खयाल रखना, दूध-फल बराबर खाते रहना। हिदायतों की इतनी लंबी सूची के बाद भी उन्हें यही कहना पडा, 'जाने तुम लोग मेरे बिना कैसे रहोगे, मेरा तो मन ही नहीं मानता। हाँ, बिना भूले रोज एक चिट्ठी डाल देना।

आखिर वह क्षण भी आ पहुँचा, जब भाई साहब एक नौकर और अन्नू को लेकर चले गए। बुआजी ने अन्नू को खूब प्यार किया, रोई भी। उनका रोना मेरे लिए नई बात थी। उसी दिन पहली बार लगा कि उनकी भयंकर कठोरता में कहीं कोमलता भी छिपी

है। जब तक ताँगा दिखाई देता रहा, वे उसे देखती रहीं, उसके बाद कुछ क्षण निर्र्जीव-सी होकर पडी रहीं। पर दूसरे ही दिन से घर फिर वैसे ही चलने लगा।

भाई साहब का पत्र रोज आता था, जिसमें अन्नू की तबीयत के समाचार रहते थे। बुआजी भी रोज एक पत्र लिखती थीं, जिसमें अपनी उन मौखिक हिदायतों को लिखित रूप से दोहरा दिया करती थीं। पत्रों की तारीख में अंतर रहता था। बात शायद सबमें वही रहती थी। मेरे तो मन में आता कि कह दूँ, बुआजी रोज पत्र लिखने का कष्ट क्यों करती हैं? भाई साहब को लिख दीजिए कि एक पत्र गत्ते पर चिपकाकर पलंग के सामने लटका लें और रोज सबेरे उठकर पढ लिया करें। पर इतना साहस था नहीं कि यह बात कह सकूँ।

करीब एक महीने के बाद एक दिन भाई साहब का पत्र नहीं आया। दूसरे दिन भी नहीं आया। बुआजी बडी चिंतित हो उठीं। उस दिन उनका मन किसी भी काम में नहीं लगा। घर की कसी-कसाई व्यवस्था कुछ शिथिल-सी मालूम होने लगी। तीसरा दिन भी निकल गया।

अब तो बुआजी की चिंता का पार नहीं रहा। रात को वे मेरे कमरे में आकर सोईं, पर सारी रात दु:स्वप्न देखती रहीं और रोती रहीं। मानो उनका वर्षों से जमा हुआ नारीत्व पिघल पडा था और अपने पूरे वेग के साथ बह रहा था। वे बार-बार कहतीं कि उन्होंने स्वप्न में देखाहै कि भाई साहब अकेले चले आ रहे हैं, अन्नू साथ नहीं है और उनकी आँखें भी लाल हैं और वे फूट-फूटकर रो पडतीं। मैं तरह-तरह से उन्हें आश्वासन देती, पर बस वे तो कुछ सुन नहीं रही थीं। मेरा मन भी कुछ अन्नू के ख्याल से, कुछ बुआजी की यह दशा देखकर बडा दु:खी हो रहा था।

तभी नौकर ने भाई साहब का पत्र लाकर दिया। बडी व्यग्रता से काँपते हाथों से उन्होंने उसे खोला और पढने लगीं। मैं भी साँस रोककर बुआजी के मुँह की ओर देख रही थी कि एकाएक पत्र फेंककर सिर पीटती बुआजी चीखकर रो पडीं। मैं धक् रह गई। आगे कुछ सोचने का साहस ही नहीं होता था। आँखों के आगे अन्नू की भोली-सी, नन्ही-सी तस्वीर घूम गई। तो क्या अब अन्नू सचमुच ही संसार में नहीं है? यह सब कैसे हो गया? मैंने साहस करके भाई साहब का पत्र उठाया। लिखा था-

प्रिय सयानी,

समझ में नहीं आता, किस प्रकार तुम्हें यह पत्र लिखूँ। किस मुँह से तुम्हें यह दु:खद समाचार सुनाऊँ । फिर भी रानी, तुम इस चोट को धैर्यपूर्वक सह लेना। जीवन में दु:ख की घडियाँ भी आती हैं, और उन्हें साहसपूर्वक सहने में ही जीवन की महानता है। यह संसार नश्वर है। जो बना है वह एक-न-एक दिन मिटेगा ही, शायद इस तथ्य को सामने रखकर हमारे यहाँ कहा है कि संसार की माया से मोह रखना दु:ख का मूल है। तुम्हारी इतनी हिदायतों के और अपनी सारी सतर्कता के बावजूद मैं उसे नहीं बचा सका, इसे अपने दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कँ।यह सब कुछ मेरे ही हाथों होना था ...आँसू-भारी आँखों के कारण शब्दों का रूप अस्पष्ट से अस्पष्टतर होता जा रहा था और मेरे हाथ काँप रहे थे। अपने जीवन में यह पहला अवसर था, जब मैं इस प्रकार किसी की मृत्यु का समाचार पढ रही थी। मेरी आँखें शब्दों को पार करती हुई जल्दी-जल्दी पत्र के अंतिम हिस्से पर जा पडी- 'धैर्य रखना मेरी रानी, जो कुछ हुआ उसे सहने की और भूलने की कोशिश करना। कल चार बजे तुम्हारे पचास रुपए वाले सेट के दोनों प्याले मेरे हाथ से गिरकर टूट गए। अन्नू अच्छी है। शीघ्र ही हम लोग रवाना होने वाले हैं।

एक मिनट तक मैं हतबुध्दि-सी खडी रही, समझ ही नहीं पाई यह क्या-से-क्या हो गया। यह दूसरा सदमा था। ज्यों ही कुछ समझी, मैं जोर से हँस पडी। किस प्रकार मैंने बुआजी को सत्य से अवगत कराया, वह सब मैं कोशिश करके भी नहीं लिख सकूँगी। पर वास्तविकता जानकारी बुआजी भी रोते-रोते हँस पडीं। पाँच आने की सुराही तोड देने पर नौकर को बुरी तरह पीटने वाली बुआजी पचास रुपए वाले सेट के प्याले टूट जाने पर भी हँस रही थीं, दिल खोलकर हँस रही थीं, मानो उन्हें स्वर्ग की निधि मिल गई हो।

https://www.hindiadda.com/sayani-bua/